<u>प्रतिवेद्य</u>

समक्ष भारतीय सर्वोच्च न्यायालय

आपराधिक अपीलीय न्यायक्षेत्र

<u>आपराधिक अपील सं. 1015/2019</u>

(SLP (क्रि.) सं. 9654 / 2017 से उद्भूत)

विष्णु कुमार तिवारी ...अपीलार्थी (गण)

बनाम

उ.प्र. राज्य द्वारा गृह सचिव,

दीवानी सचिवालय लखनऊ एवं अन्य ... प्रत्यर्थी (गण)

<u>निर्णय</u>

<u>न्यायमूर्ति, के. एम. जोसेफ</u>

1. विशेष अनुमति याचिका से उत्पन्न इस अपील में, दूसरे प्रत्यर्थी ने, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई है जो कि भारतीय दंड संहिता , 1860 (एतस्मिनपश्चात संक्षिप्ततः 'आईपीसी' के रूप में सन्दर्भित) की धारा 201, 304B एवं 498A और दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 और 4 का अवलंब लिया है। संक्षेप में, शिकायत की अन्तर्वस्तु इस प्रकार है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अपीलार्थी ने दूसरे प्रत्यर्थी की पुत्री से दिनांक 22.04.2004 को विवाह किया। अपीलार्थी के पिता ने ऑल्टो कार और विष्णु का बी.एड्. में प्रवेश के लिए रु. 2 लाख की मांग की। उसने दहेज की मांग को स्वीकार नहीं किया, और यहाँ तक कि विवाह के समय भी, उसने रू. 4 लाख की मांग की। यहाँ उसकी पुत्री का अपनी माता को सूचित करने का संदर्भ है कि उसकी सास, ससुर, पति, देवर और भाभी उसे मारते थे और दहेज लाने के लिए उसे प्रताड़ित किया करते थे। उसके टेलीफोन कॉल का संदर्भ है कि उसकी पुत्री संकटमय स्थिति में थी। यह बात दिनांक 08.09.2010 की थी और जब वे वहां पहुंचे, तो उनकी पुत्री वहां नहीं थी। जोर देने पर, दूसरे प्रत्यर्थी की पुत्री की सास ने उन्हें बताया कि वे उसे कहीं किसी अस्पताल में ले गए थे। कई अस्पतालों में खोज की गई लेकिन उनकी पुत्री का पता नहीं चल सका। इसके बाद, उन्होंने पाया कि उनकी पुत्री की मृत्यु हो गई थी। दूसरे प्रत्यर्थी की पुत्री का अपीलार्थी और ससुर, सास, देवर और भाभी द्वारा दहेज की माँग का संदर्भ दिया गया था और यह कि उन्होंने उसकी पुत्री की हत्या की है। इसके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि, अपराध सं. 721/2007 दर्ज किया गया था। तथापि, जाँच अधिकारी ने, जाँच के आधार पर, बयान लेने के पश्चात्, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 178 (एतस्मिनपश्चात संक्षिप्ततः 'आईपीसी' के रूप में सन्दर्भित) के तहत अंतिम रिपोर्ट फाइल की।

2. दूसरे प्रत्यर्थी ने विरोध याचिका दायर की। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने एक आदेश पारित किया जिसमें कहा गया कि दूसरे प्रत्यर्थी/वादी की पुत्री, अपीलार्थी की पत्नी की मृत्यु बीमारी की वजह से हो

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गई थी। यह पाया गया कि आरोपियों ने न तो उसे कोई उत्पीड़न या यातना दी थी और न ही दहेज हत्या की है। दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 और 4 एवं धारा 498 ए, 304 बी और 201 के तहत आरोपियों के विरूद्ध कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनाया गया था। यह पाया गया कि कार्रवाई के लिए पर्याप्त आधार नहीं बनाया गया है और प्रतिवाद याचिका खारिज कर दी गई और अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई।

3. दूसरे प्रत्यर्थी ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने योग्यता नहीं पाई और आपराधिक आवेदन को खारिज कर दिया। इसके कारण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की गई। यह याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 का अवलम्ब लेते हुए दायर की गई थी। उत्प्रेषण–लेख की रिट को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को रद्द करने की मांग की गई थी। पीड़ित के परिवार और अन्य साक्षियों के बयानों को लेते हुए और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करके मामले की जांच करने के लिए निर्देश पारित करने की माँग की गई थी। मामले में आरोपियों के विरूद्ध संज्ञान लेने के लिए मामले को नए सिरे से देखने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का निर्देश मांगा गया था।

4. आक्षेपित निर्णय द्वारा, उच्च न्यायालय ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेशों को अपास्त कर दिया। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया गया था कि वे अवलोकन के प्रकाश में नए सिरे से प्रतिवाद याचिका पर विचार करें। उक्त आदेश से पीड़ित महसूस

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करते हुए, विशेष अनुमति याचिका दायर की गई थी, जिसके लिए अनुमति मांगी गई थी और आदेश दिनांकित 04.12.2017 द्वारा अनुदत्त की गई थी।

5. हमने पक्षों के विद्वत अधिवक्ता को सुना और मामले में अनुमति अनुदत्त की है।

6. अपीलार्थी के विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता यह इंगित करेंगे कि उच्च न्यायालय ने यह ध्यान नहीं दिया है कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने वस्तुतः प्रतिवाद याचिका पर विचार किया है। वह उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज निम्नलिखित जाँच–परिणाम के आलोक में शिकायत करता है:

> "11 उपरोक्त विधि के आलोक में, मेरी राय है कि, यदि पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट के विरूद्ध याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवाद याचिका प्रस्तुत की गई थी, तो प्रतिवाद याचिका के माध्यम से जाना विद्वत मजिस्ट्रेट का कर्तव्य था और यदि वहाँ प्रतिवाद याचिका में कोई भी तत्व था तो वह सीआर.पी.सी. की धारा 190(1) (बी) के तहत संज्ञान ले सकता है।
>
> 12. विद्वत मजिस्ट्रेट के अभिलेख के परिशीलन से पता चलता है कि उसने याचिकाकर्ता की प्रतिवाद याचिका पर विचार नहीं किया है। चूंकि यह एक प्रतिवाद याचिका थी, इसलिए प्रतिवाद याचिका में उल्लिखित तथ्यों पर विचार करना और विधि के अनुसार इसे तय करना विद्वत सीजेएम का यह पवित्र कर्तव्य था।"

7. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश से पता चलता है कि प्रतिवाद याचिका पर विचार किया गया है। न ही मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और न ही अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश विधि के उचित सिद्धांतों को लागू करने में विफल रहे हैं। इस संबंध में, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में की गई निम्नलिखित प्रेक्षणों पर ध्यान देना समीचीन है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"10. पखाण्डो एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य 2001 (43) एसीसी 1096 के मामले में, न्यायालय का यह मत है कि अंतिम रिपोर्ट के मामले में मजिस्ट्रेट के पास चार विकल्प हैं: –

(1) वह पुलिस के निष्कर्ष से सहमत हो सकता है और अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार कर कार्यवाही को छोड़ देगा।

(2) वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 (1) (ख) के तहत संज्ञान ले सकेगा और जाँच एजेंसी के निष्कर्ष द्वारा बाध्य किए बिना शीघ्र ही अभियुक्त की कार्यविधि जारी कर सकेगा जहां उसको यह संतुष्टि हो जाती है कि पुलिस द्वारा खोजे गए तथ्यों पर कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है।

(3) यदि उसको यह संतुष्टि हो जाती है कि जाँच सम्यक् रीति से किया गया है तो वह जाँच के लिए आगे आदेश दे सकेगा।

(4) वह प्रक्रिया जारी किए बिना और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 (1) (क) के तहत कार्यवाहियों को छोड़ कर मूल परिवाद या विरोध याचिका पर जो परिवाद के समान व्यवहार करती है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और 202 के तहत कार्य करने के लिए अग्रसर हो सकता है और तत्पश्चात् परिवाद खारिज की जानी चाहिए या प्रक्रिया जारी की जानी चाहिए।"

8. वह जोर देकर कहेगा कि यह एक ऐसा मामला है जहां दूसरे प्रत्यर्थी की अपीलार्थी/पुत्री की स्वर्गीय पत्नी की स्वाभाविक मृत्यु हो गई थी। अपीलार्थी के लिए एक पक्ष यह है कि वर्ष 2004 में उसका विधिवत विवाह हुआ था। कुछ समय बाद अपीलार्थी की पत्नी ने गर्भ धारण किया और बच्चे को जन्म दिया।यह अपीलार्थी का पक्ष है कि दुर्भाग्य से बीमारी ने दूसरे प्रत्यर्थी की पुत्री को मारा। उपचार किया गया, और जैसा कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पाया गया कि, परिवादी की पुत्री की बीमारी के कारण मृत्यु हो गई। उच्च न्यायालय के समक्ष आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

9. इसके विपरीत, दूसरे प्रत्यर्थी/परिवादी की ओर से प्रस्तुत विद्वत अधिवक्ता ने प्रीति अस्पताल द्वारा जारी किए गए मृत्यु प्रमाण पत्र पर हमारा ध्यान आकर्षित किया:

"मृत्यु प्रमाणपत्र

> यह प्रमाणित किया जाता है कि मरीज श्रीमती जया तिवारी उम्र लगभग 31 वर्ष, महिला, पत्नी श्री विष्णु तिवारी, निवासी ग्राम सौराई, सैफाबाद, पट्टी प्रतापगढ़ उ.प्र जो इस ट्रस्ट में दिनांक 09.10.07 को शाम 10.29 बजे डॉक्टर ए. गुप्ता की देखरेख में सेप्टीसीमिया सी रेस्पिरेटरी डिस्ट्रेस के मामले में भर्ती किया गया था और दिनांक 10.10.2007 को 8.00 बजे सुबह कार्डियो पल्मोनरी अरेस्ट की वजह से मृत्यु हुई थी।"

10. वह बताते हैं कि एक ओर, वादी की पुत्री के मामले का संदर्भ सेप्टीसीमिया सी रेस्पिरेटरी डिस्ट्रेस में से एक है, परन्तु यह भी कहा गया है कि दूसरे प्रत्यर्थी/वादी की पुत्री की मृत्यु कार्डियो पल्मोनरी अरेस्ट की वजह से हो गई थी। यह उठाया गया प्रश्न जो उच्च न्यायालय के समक्ष लगाए गए आक्षेपित आदेशों से विचारित नहीं है।

11. उन्होंने साक्षी द्वारा दिए गए बयानों को भी संदर्भित करके यह तर्क दिया कि यह तथ्य थे जिसको मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को शिकायत के रूप में विरोध याचिका का व्यवहार करने के लिए आश्वस्त करना चाहिए था और मामले को उक्त आधार पर आगे बढ़ाया जाना चाहिए था।

12. न्यायालय ने अपीलार्थी से प्रश्न किया कि क्यों अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने पाया कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा आरोपियों के विरूद्ध भा.दं.सं. की

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

धारा 304 बी और 201 के तहत प्रथम दृष्ट्या कोई मामला नहीं है, परन्तु भा.दं.सं. की धारा 498 ए का कोई संदर्भ क्यों नहीं है। विद्वत अधिवक्ता ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया और यह तर्क दिया कि दूसरे प्रत्यर्थी /वादी ने भा.दं.सं. की धारा 498 ए के तहत मामले को नहीं दबाया। तर्क भा.दं.सं. की धारा 304 बी और 201 तक सीमित था।

इस मामले में न्यायालय ने क्या कहा उस पर एक नजर

13. अभिनंदन झा एवं अन्य बनाम दिनेश मिश्रा एआईआर [1968 एससी 117 / (1967) 3 एससीआर 668] के मामले में, यह सवाल उठता है कि जब एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है कि यह तात्विक नहीं है कि अभियुक्त को विचारण के लिए भेजने का कोई मामला बनता है तो क्या मजिस्ट्रेट सीधे पुलिस को आरोप–पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दे सकता है। इस न्यायालय ने यह विचार किया कि मजिस्ट्रेट पुलिस को अपनी राय बदलने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। हालांकि, यह अवधारित किया गया कि मजिस्ट्रेट इस तरह की रिपोर्ट को स्वीकार नहीं करने के लिए स्वतंत्र है और वह उपयुक्त कार्रवाई कर सकता है। मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 156(3) के तहत आगे की जांच का निर्देश दे सकता है। आगे यह अवधारित किया गया कि यह ऐसे मामले में होगा जहां मजिस्ट्रेट को लगता है कि जांच असंतोषजनक अथवा अधूरी है। यह ऐसे मामले में भी हो सकता है जहां आगे की जांच में गुंजाइश होती है।

14. यह अनुचित नहीं हो सकता है कि हम अभिनंदन झा (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित चर्चा का उल्लेख करते हैं कि अंतिम रिपोर्ट क्या है:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"13. यह देखा जाएगा कि संहिता, इस प्रकार, 'चार्ज–शीट' या 'अंतिम रिपोर्ट' शब्द की अभिव्यक्ति का उपयोग नहीं करता है। लेकिन यह ज्ञात है कि पुलिस नियम और विनियम, जिसमें संहिता की धारा 170 के तहत पुलिस द्वारा दर्ज की गई एक रिपोर्ट को 'आरोप–पत्र' कहा जाता है।परन्तु धारा 169 के तहत प्रेषित की गई रिपोर्टों के बाबत अर्थात् जब किसी मजिस्ट्रेट को अभियुक्त के अग्रेषित किए जाने को न्यायोचित ठहराने के लिए कोई पर्याप्त साक्ष्य नहीं है तो विभिन्न राज्यों में इसे 'निर्दिष्ट आरोप', 'अंतिम रिपोर्ट' अथवा 'सार' कहा जाता है।"

15. एच.एस. बैन्स, निदेशक, लघु बचत–सह–उप सचिव वित्त, पंजाब, चंडीगढ़ बनाम राज्य (केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़) [(1980) 4 एससीसी 631] के मामले में, पुलिस ने एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। हालांकि, मजिस्ट्रेट पुलिस के निष्कर्ष से असहमत थे और मामले का संज्ञान लेते हुए प्रक्रिया जारी करने का निर्देश दिया। एक तर्क यह लिया गया कि मजिस्ट्रेट ने संहिता की धारा 200 के तहत गवाहों और वादी की शपथ पर बयान दर्ज नहीं करने का अवैधानिक कार्य किया है, अतः मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लिया जाना चाहिए जिसके लिए वह सक्षम नहीं था क्योंकि यह धारा 173 के तहत एक रिपोर्ट नहीं थी, लेकिन धारा 169 के अर्थ के भीतर एक अंतिम रिपोर्ट थी।

यह तर्क दिया गया कि मजिस्ट्रेट के पास उसके समक्ष केवल दो विकल्प थे– (i) वह या तो आगे की जांच का आदेश दे सकता है। (ii) वह किसी शिकायत पर भी संज्ञान ले सकता था किंतु उसी के लिए वादी और साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने होंगे।

16. एचएस बैन्स (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने अपने निर्णय में निम्नलिखित रूप से अवधारित किया:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"6. यह उन प्रावधानों से देखा जाता है जिनके बारे में हमने पूर्ववर्ती प्रस्तरों में उल्लेख किया है कि एक शिकायत प्राप्त होने पर एक मजिस्ट्रेट के पास उसके लिए कई विकल्प होते हैं। वह अपराध का संज्ञान ले सकता है और धारा 200 के तहत उपस्थित वादी और गवाहों के बयान दर्ज करने के लिए अग्रसर हो सकता है। इसके बाद, यदि उनकी राय में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है तो वह धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज कर सकते हैं। यदि उनकी राय में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है तो वह धारा 204 के तहत प्रक्रिया जारी कर सकता है। यदि उनकी राय में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है तो वह धारा 204 के तहत प्रक्रिया जारी कर सकता है। हालाँकि, यदि वह उचित समझता है, तो वह प्रक्रिया के मुद्दे को स्थगित कर सकता है और या तो मामले में स्वयं से पूछताछ कर सकता है अथवा पुलिस अधिकारी अथवा ऐसे अन्य व्यक्ति द्वारा की जाने वाली जांच का निर्देश दे सकता है जैसा कि वह सोचता है कि क्या कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है अथवा नहीं, यह तय करने के लिए उचित है। वह तब प्रक्रिया जारी कर सकता है यदि उसकी राय में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार हो अथवा यदि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं हो तो शिकायत को खारिज किया जा सकता है। दूसरी ओर, पहली अवस्था में, शिकायत प्राप्त होने पर, मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेने के बजाय, धारा 156 (3) के तहत जांच का आदेश दे सकता है। पुलिस तब धारा 173 (1) के तहत जांच करेगी और एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी। पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर मजिस्ट्रेट धारा 190 (1) (बी) और सीधे मामले की प्रक्रिया के तहत अपराध का संज्ञान ले सकता है। यह वह अपनी रिपोर्ट में पुलिस द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण के बावजूद कर सकता है कि क्या अपराध किया गया है या नहीं। धारा 173 के तहत पुलिस रिपोर्ट में पुलिस द्वारा खोजे गए या अप्राप्त तथ्य और पुलिस द्वारा उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष शामिल होंगे। मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से बाध्य नहीं है और वह प्रक्रिया जारी करने का फैसला कर सकता है, यहाँ तक कि पुलिस यह सिफारिश करे कि कार्यवाही आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। पुलिस आख्या प्राप्त करने के बाद मजिस्ट्रेट प्रक्रिया जारी किए बिना अथवा कार्यवाही को छोड़ने के बिना, मूल रूप से उसे प्रस्तुत किए गये परिवाद के आधार पर अपराध का संज्ञान लेने का निर्णय ले सकता है और परिवादी एवं गवाहों के शपथ पर आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के तहत बयान दर्ज करने की कार्यवाही कर सकता है और उसके बाद यह तय करें कि क्या परिवाद अथवा जारी प्रक्रिया को खारिज करना है अथवा नहीं। मात्र तथ्य यह है कि उन्होंने पूर्व में धारा 156 (3) के तहत जांच का आदेश दिया था और धारा 173 के तहत एक आख्या प्राप्त की थी, परिवाद के कुल विलोपन का प्रभाव नहीं होगा और इसलिए मजिस्ट्रेट को धारा 200, 203 और 204 के तहत कार्यवाही से बाधित नहीं किया जाएगा। इस प्रकार, कोई मजिस्ट्रेट जो शिकायत प्राप्त होने पर, धारा 156 (3) के तहत एक जांच का आदेश देता है और धारा 173 (1) के तहत एक पुलिस

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रिपोर्ट प्राप्त करता है, उसके बाद, तीन में से एक कर सकता है: (1) वह निर्णय ले सकता है कि आगे बढ़ने और कार्रवाई छोड़ने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है; (2) वह पुलिस रिपोर्ट और जारी प्रक्रिया के आधार पर धारा 190 (1) (बी) के तहत अपराध का संज्ञान ले सकता है; यह वह अपनी आख्या में पुलिस द्वारा आए निष्कर्ष द्वारा किसी भी तरह की बाध्यता बिना कर सकता है; (3) वह मूल शिकायत के आधार पर धारा 190 (1) (ए) के तहत अपराध का संज्ञान ले सकता है और धारा 200 के तहत परिवादी और उसके गवाहों की शपथ पर छान–बीन करने के लिए प्रवृत्त हो सकता है। यदि वह तीसरे विकल्प को अपनाता है, तो वह धारा 202 के तहत जांच को धारण अथवा निर्देशित कर सकता है यदि वह उचित समझता है। एतस्मिनपश्चात् वह यथास्थिति के अनुसार परिवाद अथवा जारी प्रक्रिया को खारिज कर सकता है।"

(प्रभाव वर्धित)

17. इस प्रकार, जब वह पुलिस रिपोर्ट में आए निष्कर्षों से असहमत होकर संज्ञान के माध्यम से कार्रवाई करने के लिए आगे बढ़ता है, तो वह पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संज्ञान ले रहा होगा न कि शिकायत पर। और, इसलिए, संहिता की धारा 200 के तहत वादी अथवा उसके साक्षियों की जांच करने का सवाल ही नहीं उठता। यह दृष्टिकोण स्पष्टतः प्रतिपादित था।

18. महेश चंद बनाम बी. जनार्दन रेड्डी के मामले में, अपीलार्थी/वादी ने प्रतिवादी द्वारा अपराधों के कृत्य का आरोप लगाते हुए रिपोर्ट दर्ज कराई थी। तदोपरान्त, जांच से असंतुष्ट होने के कारण, उन्होंने मजिस्ट्रेट के न्यायालय में एक आपराधिक शिकायत दर्ज की। इसी बीच, जांच अधिकारी ने एक अंतिम रिपोर्ट दायर की जिसमें पाया गया कि विवाद दीवानी प्रकृति का था। अपीलार्थी ने विरोध याचिका दायर की। अंतिम रिपोर्ट मजिस्ट्रेट द्वारा स्वीकार कर लिया गया। अपीलार्थी द्वारा दायर किया गया शिकायत का मामला भी समाप्त कर दिया गया था। यह निर्णायक हो गया। जैसा कि संहिता

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की धारा 200 के तहत था, अपीलार्थी ने तीसरी शिकायत दर्ज की। सम्मन जारी किए जाने पर, उच्च न्यायालय के समक्ष सफलतापूर्वक पूछताछ की गई। हम इस न्यायालय द्वारा लाभकारी रूप से निम्नलिखित चर्चा को ध्यान कर सकते हैं।

> "12. <u>इसमें कोई संदेह या विवाद नहीं हो सकता है कि केवल इसलिए कि मजिस्ट्रेट ने एक अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली है, उसी के द्वारा विरोध/शिकायत याचिका पर अपराध का संज्ञान लेने के लिए अपने रास्ते में खड़ा नहीं होगा;</u> लेकिन जिस प्रश्न को उत्पन्न करने और उत्तर देने की आवश्यकता है, वह यह होगा कि उक्त शक्ति का किस परिस्थिति में प्रयोग किया जा सकता है।
>
> *** *** ***

16. *मुन्नीलाल ठाकुर* [1985 Cri LJ 437:1984 Pat LJR 774] मामले में पटना उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ इस प्रश्न से चिंताशील थी कि क्या पुलिस द्वारा दायर अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार करने के पश्चात भी मजिस्ट्रेट तथ्य के समान अथवा सदृश आरोपों पर शिकायत अथवा विरोध याचिका के ऊपर अपराध का संज्ञान ले सकता है; जिसका उत्तर स्वीकारोक्ति में दिया गया था।

17. यहां विचारार्थ जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है, वह न तो उसमें उत्पन्न हुआ और न ही प्रचार किया गया था।

18. *जयशंकर मुंड* [1989 Cri LJ 1578 : (1989) 67 cut LT 426] मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय के पास फिर से यहां उठाए गए प्रश्न पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था। कोर्ट ने अवधारित किया: (Cri LJ pp. 1582–83, प्रस्तर 6)

> "यद्यपि कोई विरोध याचिका किसी शिकायत की प्रकृति में है तो वह सतर्कता पुलिस द्वारा पूर्व से अवधारित की गई अंतिम रिपोर्ट के समापन की जांच के संदर्भ में है और क्योंकि सूचक के संहिता की धारा 202 के तहत विधिपूर्ण अभिवचन पर छान–बीन नहीं की गई थी, जिससे अभियुक्त की वजह से कोई अवैधता अथवा पक्षपात नहीं हुआ था। यदि इस तरह के दृष्टिकोण को स्वीकार किया गया है और ऐसा कोई कारण नहीं है कि इस तरह के दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए, तो इस विशेष मामले में आवश्यक परिणाम यह होगा कि विरोध याचिका जो याचिकाकर्ता द्वारा दायर शिकायत याचिका की प्रकृति की है निरंतरता और सतर्कता पुलिस द्वारा संस्थापित एवं जांच किए गए मामले के संबंध में होगी।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

19. स्थापित विधिक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हमारा मत है कि उच्च न्यायालय यह अवधारित करने में सही नहीं था कि दूसरी शिकायत पूर्णतः वर्जित थी। यह स्थापित विधि है कि समान तथ्यों पर दूसरी शिकायत दर्ज करने में कोई वैधानिक रोक नहीं है। ऐसे मामले में जहां किसी पूर्व शिकायत को बिना कोई कारण बताए खारिज कर दिया जाता है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के तहत मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है और कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार होने पर प्रक्रिया जारी कर सकता है। जैसा कि प्रमाथ नाथ तालुकदार [एआईआर 1962 एससी 876 : 1962 Supp (2) एससीआर 297: (1962) 1 क्रि एलजे 770] में अवधारित किया गया कि परिवादी के विरूद्ध उसके मामले के पूर्ण विचार करने पर पिछले मामले में निर्णय दिए जाने के बाद द्वितीय परिवाद को खारिज किया जा सकता है। इसके अलावा, समान तथ्यों पर द्वितीय परिवाद केवल अपवादिक परिस्थितियों में ही चलाई जा सकती है, अर्थात्, जहां पिछले आदेश को अपूर्ण अभिलेख पर हो अथवा परिवाद की प्रकृति की गलतफहमी पर हो अथवा यह स्पष्टतः विवेकहीन, अन्यायपूर्ण हो अथवा जहां नए तथ्य हो सकते हों, युक्तियुक्त परिश्रम के साथ पारित नहीं किया गया था, पूर्व की कार्यवाहियों में अभिलेख पर लाया गया है, प्रस्तुत किया गया है। इसलिए, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, मामले को विद्वत मजिस्ट्रेट के पास वापस प्रेषित किया जाना चाहिए ताकि यह पाया जा सके कि कथित अपराध के संज्ञान के लिए कोई मामला बनाया गया था अथवा नहीं।"

(प्रभाव वर्धित)

19. गंगाधर जनार्दन म्हात्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2004) 7 एससीसी 768] के मामले में, इस न्यायालय ने दोहराया कि मजिस्ट्रेट अंतिम रिपोर्ट आने पर स्वतंत्र रूप से जांच से उभरने वाले तथ्यों पर अपना विचार लागू कर सकता है और धारा 190 (1) (बी) के तहत संज्ञान ले सकता है, और इस संबंध में धारा 190 (1) (बी) के तहत संज्ञान लेने के लिए संहिता की धारा 200 और 202 के तहत प्रक्रिया का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है।हालांकि, ऐसा करना मजिस्ट्रेट के ऊपर था।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

20. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने वाले सूचनादाता द्वारा विरोध याचिका दायर करने के संबंध में, इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित चर्चा पर ध्यान देना आवश्यक है:

"6. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने वाले सूचनादाता द्वारा विरोध याचिका दायर करने के लिए संहिता में कोई प्रावधान नहीं है। लेकिन यह अमल में रही है। विरोध याचिका दायर करने से संबंधित संहिता में एक प्रावधान की अनुपस्थिति पर विचार किया गया है। भगवंत सिंह बनाम कमिश्नर ऑफ पुलिस [(1985) 2 एससीसी 537: 1985 एससीसी (क्रि) 267: एआईआर 1985 एससी 1285] में इस न्यायालय ने सूचनादाता को दी जा रही सूचना की वांछनीयता पर जोर दिया जब धारा 173 (2) के तहत की गई रिपोर्ट विचाराधीन है। न्यायालय ने निम्नलिखित अवधारित किया जो इस प्रकार है: (एससीसी पी. 542, प्रस्तर 4)

"इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि, जब धारा 173 की उप–धारा (2) (i) के तहत किसी थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा की गई रिपोर्ट पर विचार करने पर, मजिस्ट्रेट अपराध और प्रक्रिया जारी करने का संज्ञान लेने के लिए प्रवृत्त नहीं है, सूचनादाता को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए ताकि वह अपराध और जारी प्रक्रिया का संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट को सहमत कराने के लिए अपने तर्कों को प्रस्तुत कर सके। तदनुसार हम इस दृष्टिकोण के हैं कि ऐसे मामले में जहां मजिस्ट्रेट को धारा 173 की उप–धारा (2) (i) के तहत एक रिपोर्ट अग्रेषित की जाती है, वह अपराध का संज्ञान नहीं लेने और कार्यवाही को छोड़ने या यह विचार करने के लिए कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित कुछ व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है, मजिस्ट्रेट को सूचनादाता को नोटिस देना चाहिए और रिपोर्ट के विचार के समय उसे सुनवाई का अवसर प्रदान करना चाहिए।"

9. जब पुलिस द्वारा धारा 173 (2) (i) के तहत मजिस्ट्रेट को प्रेषित की गई एक आख्या उसके समक्ष रखी जाती है, तो कई स्थितियां उत्पन्न होती हैं। रिपोर्ट यह निष्कर्ष निकाल सकती है कि कोई अपराध किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों द्वारा कारित किया गया प्रतीत होता है और ऐसे मामले में, मजिस्ट्रेट या तो (1) आख्या को स्वीकार कर सकता है और अपराध और जारी करने की प्रक्रिया का संज्ञान ले सकता है, या (2) आख्या से असहमत और कार्यवाही को छोड़ सकते हैं, या (3) धारा 156 (3) के तहत अग्रिम जांच का निर्देश दे सकता है और पुलिस को अग्रिम आख्या बनाने की आवश्यकता हो सकती है। दूसरी ओर पुलिस के अनुसार आख्या में कहा जा सकता है कि, कोई

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अपराध कारित नहीं हुआ है। जब इस तरह की आख्या मजिस्ट्रेट के समक्ष रखी जाती है, तो उसके पास तीन तरीकों में से एक को अपनाने का विकल्प होता है जैसे कि (1) वह आख्या को स्वीकार कर सकता है और कार्यवाही को छोड़ सकता है; या (2) वह आख्या से असहमत हो सकता है और यह विचार कर सकता है कि अग्रिम कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, तो वह अपराध और प्रक्रिया जारी करने का संज्ञान ले सकता; या (3) वह पुलिस द्वारा धारा 156 (3) के तहत अग्रिम जांच करने का निर्देश दे सकता है। इसलिए, स्थिति अब धारा 173 (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर अच्छी तरह से तय हो गई है कि कोई मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190 (1) (बी) के तहत अपराध का संज्ञान लेने का हकदार है, भले ही पुलिस आख्या का प्रभाव हो कि अभियुक्त के विरूद्ध कोई मामला नहीं बनता। मजिस्ट्रेट जांच के दौरान पुलिस द्वारा जांच किए गए गवाहों के बयानों को ध्यान में रख सकता है और परिवाद किए गए अपराध का संज्ञान ले सकता है और अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने का आदेश दे सकता है। धारा 190 (1) (बी) यह प्रतिपादित नहीं करती है कि कोई मजिस्ट्रेट केवल अपराध का संज्ञान ले सकता है यदि जांच अधिकारी एक मत देता है कि जांच ने अभियुक्त के विरूद्ध मामला बनाया है। मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्ष की अनदेखी कर सकता है और स्वतंत्र रूप से अपने दिमाग को जांच से निकलने वाले तथ्यों पर लागू कर सकता है और मामले का संज्ञान ले सकता है, यदि वह उचित समझता है, तो धारा 190 (1) (बी) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करें और अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने को निर्देशित करें। मजिस्ट्रेट धारा 190 (1) (ए) के तहत किसी मामले का संज्ञान लेने के लिए संहिता की धारा 200 और 202 में प्रतिपादित प्रक्रिया का पालन करने के लिए ऐसी स्थिति में बाध्य नहीं है, यद्यपि अधिनियम की धारा 200 अथवा धारा 202 के तहत भी उसके लिए ही है। [देखें *इंडिया कैरेट (प्रा.) लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य* [(1989) 2 एससीसी 132: 1989 एससीसी (क्रि) 306: एआईआर 1989 एससी 885].] जब मजिस्ट्रेट मामले को आगे बढ़ाने और संज्ञान लेने का फैसला करता है, तो सूचनादाता पूर्वाग्रह से प्रभावित नहीं होता है। लेकिन जहां मजिस्ट्रेट यह तय करता है कि पर्याप्त आधार आगे की कार्यवाही के लिए निर्वाह नहीं करती है और कार्यवाही को छोड़ देती है अथवा यह विचार करती है कि किसी के विरूद्ध कार्यवाही के लिए सामग्री है और अन्य के संबंध में अपर्याप्त आधार हैं, सूचनादाता पूर्णतः अथवा आंशिक अप्रभावी दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट निश्चित रूप से पूर्वाग्रहित होगा। इसलिए, इस न्यायालय ने *भगवंत सिंह* [(1985) 2 एससीसी 537: 1985 एससीसी (क्रि) 267: एआईआर 1985 एससी 1285] मामले में निर्दिष्ट किया कि जहां मजिस्ट्रेट ने संज्ञान नहीं लेने और कार्यवाही को छोड़ने या विचार करने का फैसला किया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित कुछ व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, सूचनादाता को नोटिस और मामले में सुनवाई का अवसर प्रदान करना अनिवार्य हो जाता है। जैसा कि ऊपर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निर्दिष्ट है, इस संबंध में नोटिस जारी करने के लिए संहिता में कोई प्रावधान नहीं है।"

(प्रभाव वर्धित)

21. गंगाधर जनार्दन म्हात्रे (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने निम्नलिखित चर्चा में सूचनादाता को नोटिस जारी करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया:

"12. इसलिए, रिपोर्ट के विचार के समय मजिस्ट्रेट द्वारा नोटिस जारी करने पर तनाव है। यदि सूचनादाता को इस बात की जानकारी नहीं है कि मामले पर विचार कब किया जाना है, तो जाहिर है, उससे गलती नहीं हो सकती है, भले ही देर से ही सही पुलिस द्वारा जारी नोटिस के प्रत्युत्तर में विरोध याचिका दायर की गई हो। किन्तु जैसा कि *भगवंत सिंह* [(1985) 2 एससीसी 537: 1985 एससीसी (क्रि) 267: एआईआर 1985 एससी 1285] के मामले में निर्दिष्ट किया गया है यह अधिकार मुखबिर को प्रदत्त है और किसी को नहीं।"

(प्रभाव वर्धित)

22. किशोर कुमार ज्ञानचंदानी बनाम जी.डी. मेहरोत्रा [(2011) 15 एससीसी 513] मामले में निश्चित अपराधों के संबंध में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। पुलिस ने एक अंतिम रिपोर्ट दायर की जिसे स्वीकार कर लिया गया। लगभग तीन महीने बाद, एक विरोध याचिका दायर की गई थी। मजिस्ट्रेट ने उसी को परिवाद के रूप में माने जाने को निर्देशित किया। उन्होंने संहिता की धारा 202 के तहत जांच और संज्ञान लेने के लिए आगे बढ़ने को अवधारित किया। प्रस्तर 4 प्रासंगिक है और यह इस प्रकार है:

"4. पक्षकारों के बीच कुछ विवाद है कि मजिस्ट्रेट द्वारा 27–1–1996 को अंतिम रूप स्वीकार करने से पूर्व परिवादी को नोटिस दिया गया था और परिवादी ने आपत्तियां दायर नहीं की थीं, जबकि परिवादी का मामला यह है कि उसे न्यायालय से कोई नोटिस प्राप्त नहीं हुआ था। जैसा कि हो सकता है, हम वर्तमान मामले को तय करने के लिए उस विवाद में नहीं पड़ रहे हैं क्योंकि हमारे दृष्टिकोण में यह किसी भी तरह से भौतिक नहीं है और न ही यह

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अभियुक्त द्वारा कारित किए गये कथित अपराध का संज्ञान लेने के परिवाद के आधार पर मजिस्ट्रेट के अधिकार–क्षेत्र से बाहर है, भले ही वह पहले ही अंतिम रूप स्वीकार कर चुका हो, वही पुलिस द्वारा दायर किया गया हो।"

23. वास्तव में, इस मामले को न्यायालय में मत के विचलन के मद्देनजर इस न्यायालय के तीन विद्वत न्यायाधीशों की खंडपीठ ने ही तय किया था। न्यायालय ने निम्नलिखित रूप से अवधारित किया:

"6. यह बहुत अच्छी तरह से तय है कि जब पुलिस जांच के बाद संहिता की धारा 173 के तहत अंतिम रूप दायर करती है, तो मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा दिए गए निष्कर्ष से असहमत हो सकता है और संहिता की धारा 190 के तहत शक्ति के प्रयोग में संज्ञान ले सकता है। मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 156 के तहत मामले में अग्रिम जांच का निर्देश और संज्ञान नहीं ले सकता है। जहां मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रूप को स्वीकार करता है, सामान्य परिवाद दायर करने के लिए परिवादी के अधिकार को नहीं छीना जा सकता और वास्तव में ऐसा परिवाद दायर होने पर मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 201 के तहत प्रक्रिया का पालन करता है और संज्ञान लेता है, यदि परिवादी द्वारा प्रस्तुत सामग्री अपराध कारित करती है। गोपाल विजय वर्मा बनाम भुनेश्वर प्रसाद सिन्हा [(1982) 3 एससीसी 510:1983 एससीसी (क्रि) 110] मामले में इस प्रश्न को इस न्यायालय द्वारा उठाया और उत्तर दिया गया है, जिसके अधीन पटना उच्च न्यायालय के असंगत दृष्टिकोण को उलट दिया गया है। न्यायालय ने पूर्वोक्त मामले में कोई अनिश्चित शर्तों के बिना यह दर्शित किया है कि अंतिम रूप की स्वीकृति मजिस्ट्रेट को परिवाद की कार्यवाही में प्रस्तुत सामग्री के आधार पर संज्ञान लेने से निषेध नहीं करती है।

(प्रभाव वर्धित)

इस न्यायालय ने पाया कि उच्च न्यायालय का मजिस्ट्रेट द्वारा लिए गए संज्ञान के साथ हस्तक्षेप करने में त्रुटि थी।

24. राकेश कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य [(2014) (13) एससीसी 133] के मामले में, पुलिस द्वारा दायर की गई प्रथम सूचना आख्या के आधार पर जांच के बाद एक अंतिम आख्या दायर की गई। मजिस्ट्रेट ने

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अंतिम आख्या को स्वीकार कर लिया। उन्होंने मामले को एक साथ परिवाद मामले की तरह आगे बढ़ाने का निर्देश दिया। संहिता की धारा 200 और 202 के तहत बयान दर्ज किए गए थे। उच्च न्यायालय ने अभियुक्त की दलील को ठुकरा दिया, जिन्हें सम्मन जारी किया गया था। अभियुक्त का यह तर्क था कि एक नकारात्मक अंतिम आख्या स्वीकार करने पर, न्यायालय परिवादी द्वारा दायर विरोध याचिका के आधार पर कार्रवाई नहीं कर सकती थी। यह न्यायालय एच.एस. बैन्स (उपरोक्त) में निर्णय को संदर्भित करता है। महेश चंद (उपरोक्त) मामले के प्रस्तर 12 में प्रतिपादित विधि के सिद्धांत, जिन्हें हमने पूर्व में भी संदर्भित किया है, को स्वीकृति दी गई। उच्च न्यायालय के आदेश को स्वीकृति दी गई थी।

25. यह एक ऐसा मामला है जहां प्रथम सूचना आख्या का अनुसरण करते हुए जांच अधिकारी ने जांच संचालित की। परिवादी, उसकी पत्नी और उसके पुत्र से बयान लिए गए। यह उन बयानों से भिन्न है जो डॉक्टरों से लिए गए थे जिन्होंने दूसरे प्रत्यर्थी/परिवादी की पुत्री का इलाज किया था। जांच अधिकारी ने निष्कर्ष निकाला कि ऐसा कोई तथ्य नहीं है जो अभियुक्त को विचारण हेतु भेजे जाने का अधिपत्र दे। जब इस तरह की आख्या न्यायालय के समक्ष दायर की जाती है, तो यह संदेह की छाया से परे है कि मजिस्ट्रेट अभी भी अंतिम आख्या को अस्वीकार करने और अपराधों का संज्ञान लेने के लिए अग्रसर हो सकता है, जो उसके दृष्टिकोण में प्रतिबद्ध है। दूसरी ओर, वह सामग्री जिस पर विचार करने के बाद, जिसमें जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए गवाहों के बयान शामिल होंगे, अंतिम आख्या को स्वीकार करने का निर्णय लें। वह इस दृष्टकोण पर विचार कर सकता है कि यह एक ऐसा

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मामला है जहां अधिकारी द्वारा आगे की जांच को निर्णय लेने से पहले वारंट किया जाता है कि क्या संज्ञान लिया जाना है अथवा नहीं।

26. निस्संदेह यह सच है कि इससे पहले कि कोई मजिस्ट्रेट धारा 173 के तहत अंतिम आख्या को स्वीकार करने के लिए आगे बढ़ता है और अभियुक्त को दोषमुक्त करता है तो यह मजिस्ट्रेट पर निर्भर है कि वह अपना लक्ष्य विरोध याचिका की विषयवस्तु पर लागू करे और उसके पश्चात निष्कर्ष पर पहुंचे। जबकि जांच अधिकारी अंतिम आख्या की उत्पत्ति करते हुए विषयवस्तु को स्थापित कर सकता है, उसके अनुसार जो उसके प्रयासों का परमोत्कर्ष है, मजिस्ट्रेट का कर्तव्य अंतिम आख्या को सहज ही स्वीकार करने तक सीमित नहीं है। यह तथ्यों को परखने के लिए उस पर अवलंबित है, और परिवादी को सुनने और विरोध याचिका की विषयवस्तु पर विचार करने के पश्चात, अंततोगत्वा भविष्य की कार्रवाई के दौरान यह तय करना है कि बात चाहे जारी रखने की हो अथवा इससे पर्दा गिराने की।

27. इस मामले में, जैसा कि हमने ध्यान दिया है कि उच्च न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही की, कि मजिस्ट्रेट ने विरोध याचिका पर विचार नहीं किया है और याचिका में उल्लिखित तथ्यों पर विचार करना उनका परम् कर्तव्य था। हमने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश की जांच की है। वह विरोध याचिका का उल्लेख करता है। इसमें दी गई विषयवस्तु निःसंदेह ध्यान दी गई है। मजिस्ट्रेट का कहना है कि उसने प्रथम सूचना आख्या के माध्यम से जाँच की है। वह पाता है कि परिवादी अपनी पुत्री की मृत्यु के संबंध में चश्मदीद गवाह नहीं है। उन्होंने यह अभिलिखित किया कि धारा 161 के तहत दिए गए साक्षियों के बयान लिए। हम यह ध्यान दे सकते हैं कि परिवादी की पुत्री

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के विरूद्ध कारित किए गए यातना के मामले के संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए गए थे:

> "…. सर्वप्रथम मैं इस मामले के परिवादी शिव शंकर ओझा के बयान के माध्यम से गुजरे हैं। यद्यपि इस गवाह ने आंशिक रूप से इस घटना का पक्ष लिया है, परन्तु यहां यह उल्लेख करना समीचीन है कि मृतक जया की मृत्यु के समय, यह गवाह मौजूद नहीं था। जब इस गवाह से पूछा गया कि क्या जब आपको आपकी पुत्री पर की पई यातना की सूचना मिलने के बाद आपने कहीं पर कोई प्रार्थना पत्र दिया या किसी रिश्तेदार को किसी माध्यम से सूचना दी इत्यादि। इस प्रश्न के उत्तर में, उन्होंने कहा है कि 'नहीं'। मैं भी मृतक की माता श्रीमती शकुंतला देवी के बयान से विधिवत गुजरा हूं। मृतक की माता ने जांच अधिकारी को बयान दिया है कि मेरा दामाद हरियाणा में निजी नौकरी कर रहा है। "

28. एतस्मिनपश्चात, उन्होंने मृतक की माता और भाई के बयान का उल्लेख किया। वह चिकित्सकों के बयानों का उल्लेख करता है। चिकित्सकों ने निष्कर्ष निकाला कि मृतक की मृत्यु उसकी बीमारी की वजह से हुई। चिकित्सकों में से एक ने कहा है कि मरीज की माता श्रीमती शकुंतला ने प्रवेश प्रपत्र पर हस्ताक्षर किए थे। मरीज की जांच की गई। मरीज ने दो माग पूर्व सीजेरियन ऑपरेशन के द्वारा एक बच्चे को जन्म दिया था। वह बुखार से ग्रस्त थी। वह तेजी से सांस ले रही थी। उसका शरीर पीलिया से ग्रस्त था। उसे श्वसन सहायक मशीन की आवश्यकता थी। मरीज की बीमारी रूधिर विन आघात और कई अंग की विफलता थी। दिनांक 08.10.2017 को उसकी मृत्यु हो गई। मौत उसकी बीमारी की वजह से पाई गई।

29. वास्तव में, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट इसके दृष्टिगत प्रवृत्त हुए कि मजिस्ट्रेट को जांच अधिकारी और एकत्र किये गए तथ्यों द्वारा अभिलिखित किये गए गवाहों के बयानों के आधार पर संज्ञान लेना होगा। वह आगे पाते हैं

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कि यदि विरोध याचिका और दस्तावेजों के आधार पर संज्ञान लिया जाता है, तो यह अवैध है। इसके बाद यह पाया गया कि मृतक की मृत्यु उसकी बीमारी की वजह से हुई और अभियुक्तों के विरूद्ध कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनाया गया।

30. हम यह ध्यान दे सकते हैं कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और अपर सत्र न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध दूसरे प्रत्यर्थी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकारिता का अवलंब लिया है. रिट याचिका में मांगी गई राहत आदेशों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण–लेख में से एक है। हम संकेत दे सकते हैं कि राधेश्याम एवं अन्य बनाम छबी नाथ एवं अन्य [(2015) 5 एससीसी 423] में, इस संबंध में यह न्यायालय सूर्य देव राय बनाम राम चंदर राय एवं अन्य [(2003) 6 एससीसी 675] मामले में इस न्यायालय के फैसले को अधिप्रभावी करने के बाद, यह प्रतिपादित किया गया कि उत्प्रेषण–लेख का रिट दीवानी न्यायालय के आदेश को रद्द करने के लिए झूठ नहीं होगा। उच्च न्यायालय को किसी भी मूल्य पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों के व्यवहार के साथ अपनी अधिकार–क्षेत्र की सीमित प्रकृति को ध्यान में रखना चाहिए।

31. इस मामले के तथ्यों में, उच्च न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि मजिस्ट्रेट ने दूसरे प्रत्यर्थी/परिवादी द्वारा विरोध याचिका पर विचार नहीं किया है। ऐसे मामले में जहां विरोध याचिका पर विचार नहीं किया गया था, तो यह न्यायालय के लिए मुक्त हो सकता है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अंतिम आख्या के साथ व्यवहारतः अपने अधिकार–क्षेत्र के प्रयोग में

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अवैधता कारित की गई थी। परन्तु यह एक अन्य मामला है जब मजिस्ट्रेट ने निःसंदेह विरोध याचिका पर विचार करने के लिए न्यायालय को निर्देश दिया कि कार्यवाही को अपास्त करने के उद्देश्य के लिए वह इस मामले पर फिर से विचार करे।

32. हमें लगता है कि, जैसा कि हमारे द्वारा ध्यान दिया गया है, उच्च न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने में स्पष्टतः त्रुटि थी कि विरोध याचिका पर विचार नहीं किया गया था। यह कि उच्च न्यायालय मामले के दो दृष्टिकोणों में से एक को ले सकता है, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पुष्टि के रूप में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेशों के साथ अपने हस्तक्षेप के लिए एक असुरक्षित आधार हो सकता है।

33. तथ्यों के आधार पर जिसमें चिकित्सकों के बयान शामिल हैं और विरोध याचिका के तर्कों पर ध्यान आकर्षित करने के पश्चात, मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यह मामला जारी रखने के लिए उपयुक्त नहीं है और यह दूसरे प्रत्यर्थी/परिवादी की पुत्री का बीमारी की वजह से मृत्यु के रूप में समाप्त होना चाहिए। यह छान–बीन जो न्यायालय द्वारा चिकित्सकों के बयानों के संदर्भ के साथ पहुंची है। समान रूप से, जिन परिस्थितियों में दूसरे प्रत्यर्थी/परिवादी की पुत्री की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु प्रतिपादित किया गया है, यह पाया गया कि भा.द.सं. की धारा 201 के तहत कोई मामला नहीं बनाया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्र न्यायाधीश के समक्ष, धारा 498 ए से संबंधित पहलू अथवा वास्तव में दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 और 4 से संबंधित प्रावधानों को दूसरे प्रत्यर्थी द्वारा जोर नहीं दिया गया था। इसके अतिरिक्त, हमे यह भी ध्यान दिया कि मजिस्ट्रेट ने

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परिवादी के बयान का उल्लेख किया है कि कथित रूप से दहेज की मांग के आधार पर स्पष्टतया यातना के संबंध में कोई परिवाद दायर नहीं की गई थी।

34. हम प्रति–शपथपत्र के साथ विरोध याचिका से भी गुजरे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रस्तर 2 में मृतक और मृतक के पिता से संपत्ति की मांग और यातना का सामान्य संदर्भ है। एतस्मिनपश्चात प्रस्तर 3 से 15 में दूसरे प्रत्यर्थी की पुत्री के परिस्थितिजन्य मृत्यु से से संबंधित है। उक्त प्रस्तरों में, इस मामले को बाहर किये जाने की मांग की गई कि जांच अधिकारी के समक्ष जाली दस्तावेजों को प्रस्तुत किया गया था। अन्य बातों के साथ, मृतक की माता और भाई के शपथ पत्रों को भी जालसाजी के मामले को परियोजित करने के लिए दायर किए गए थे। उदाहरणतः, मृतक की माता के शपथपत्र में, वह दावा करती है कि वह 9 और 10 अक्टूबर, 2007 को अस्पताल नहीं गई है, जबकि, बयान के अनुसार संहिता की धारा 161 के तहत, उसने कथित तौर पर कहा है कि दिनांक 09.10.2007 को, मृतक को उनके द्वारा प्रीति अस्पताल में भर्ती कराया गया था, जिसमें स्पष्ट रूप से उसकी माता शामिल है। इस संबंध में हमारे द्वारा ध्यान दिया गया है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मोहम्मद यूसुफ एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य [2008 CriLJ 493] मामले के फैसले पर भरोसा किया है और यह विचार किया है कि यदि विरोध याचिका और संलग्न दस्तावेजों के आधार पर संज्ञान लिया जाता है, तो यह अवैध है। उन्होंने यह भी विचार किया कि मजिस्ट्रेट को केस डायरी और जांच के दौरान एकत्र किए गए तथ्यों में जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किये गए गवाहों के बयानों के आधार पर संज्ञान लेना है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

35. उपरोक्त निर्णय में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वत एकल न्यायाधीश का प्रस्तर 11 में यह कहना था:

> "11 जहां मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निष्कर्षों पर पहुँचने की की अनदेखी करते हुए धारा 190 (1) (बी) के तहत संज्ञान लेने का फैसला करता है और अपने दिमाग को स्वतंत्र रूप से लागू करता है, वह केवल केस–डायरी और जांच के दौरान एकत्रित किये गए तथ्यों में पुलिस द्वारा दर्ज किए गए गवाहों के बयानों पर कार्रवाई कर सकता है। जांच अधिकारी द्वारा एकत्रित किये गए तथ्यों के अतिरिक्त किसी भी तथ्य पर विचार करना उस स्तर पर स्वीकार्य नहीं है। तत्काल मामले में विरोध याचिका और संगत शपथ–पत्रों के आधार पर संज्ञान लिया गया था। मजिस्ट्रेट को दं.प्र.सं. के अध्याय XV के तहत परिवाद मामले की प्रक्रिया को अपनाना चाहिए और परिवादी के बयानों को अभिलिखित करना चाहिए एवं वे गवाह जिन्होंने दं.प्र.सं. की धारा 200 और 202 के तहत हलफनामा दायर किया था। मजिस्ट्रेट विरोध याचिका और उसके समर्थन में दायर शपथ–पत्रों के आधार पर दं.प्र.सं. की धारा 190 (1) (बी) के तहत संज्ञान नहीं ले सकता। मजिस्ट्रेट ने दं.प्र.सं. की धारा 190 (1) (बी) के तहत संज्ञान लेते हुए बाह्य तथ्यों अर्थात् विरोध याचिका और शपथपत्र को ध्यान में रखा है, आक्षेपित आदेश दूषित किया गया है।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

36. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने विद्वत एकल न्यायाधीश द्वारा निर्धारित विधि का पालन किया है। वास्तव में, हम इस पहलू के संबंध में यह ध्यान दे सकते हैं कि यदि विद्वत एकल न्यायाधीश,

जिसने इस मामले में आक्षेपित आदेश का प्रतिपादन किया है, एक अलग दृष्टिकोण था तो उन्हें इस मामले को एक वृहद पीठ को निर्दिष्ट करना चाहिए।

37. एच.एस. बैन्स (उपरोक्त) में, संहिता की धारा 190 (1) (ए) के अर्थ के भीतर निजी परिवाद था। मामला धारा 156 (3) के तहत पुलिस को प्रेषित किया गया था। जांच अधिकारी ने अंतिम आख्या दायर की। उसमें, न्यायालय ने यह दृष्टिगत किया कि धारा 190 (1) (बी) के तहत अंतिम

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आख्या के बावजूद संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट की शक्ति के अतिरिक्त, वह निजी परिवाद पर भी वापस आ सकता है जो प्रारम्भ में दायर की गई थी परन्तु जांच के पश्चात परिवादी एवं उसके गवाहों, जैसा कि संहिता की धारा 200 और 202 के तहत परिकल्पित किया गया था। निःसंदेह, संहिता की धारा 190 (1) (बी) के तहत अंतिम आख्या को संज्ञान लेने के संबंध में, परिवादी अथवा उसके गवाहों की जांच करना आवश्यक नहीं है, यद्यपि वह ऐसा कर सकता है।

38. <u>महेश चंद</u> (उपरोक्त) में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि मामला प्रथम सूचना आख्या द्वारा प्रारम्भ किया गया था और संहिता की धारा 190 (1) (ए) के तहत न्यायालय में परिवादी द्वारा आगे की कार्रवाई की गई थी। प्रथम सूचना आख्या पर, जांच के पश्चात, अंतिम आख्या दायर की गई थी। अंतिम आख्या स्वीकार की गई और इसे बंद कर दिया गया। यह इस वास्तविकता के बावजूद है कि विरोध याचिका थी। जैसा कि तीसरा परिवाद परिवादी द्वारा दायर की गई थी। यह न्यायालय अवधारित करता है कि अंतिम आख्या की स्वीकृति विरोध/परिवाद याचिका पर संज्ञान लेने के तरीके में नहीं होगी।

39. <u>किशोर कुमार ज्ञानचंदानी</u> (उपरोक्त) मामले में, अंतिम आख्या को विरोध याचिका पर स्वीकार करने के बाद जिसे परिवाद के रूप में माना गया था, संहिता की धारा 200 के अभिप्राय के अन्तर्गत साक्ष्य लिया गया था।

40. <u>राकेश कुमार</u> (उपरोक्त) में, अंतिम आख्या दायर की गई थी जिसे मजिस्ट्रेट ने स्वीकार कर लिया था, लेकिन उन्होंने एक साथ मामले को परिवाद मामले के रूप में आगे बढ़ाने का निर्देश दिया और संहिता की धारा 200 और 202 के तहत बयान दर्ज किए गए।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

41. इस मामले के तथ्यों में, विरोध याचिका में निहित आरोपों की प्रकृति और उन अनुलग्नकों के संबंध में जो अनिवार्य रूप से शपथपत्रों में शामिल थे, यदि मजिस्ट्रेट अंतिम आख्या के विचार के आधार पर आश्वस्त था तो संहिता की धारा 161 के तहत बयान का कोई भी प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है, निश्चित रूप से मजिस्ट्रेट को परिवाद के रूप में विरोध याचिका का व्यवहार करने के द्वारा संज्ञान लेने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। तथ्य यह है कि उसके पास किसी मामले में परिवाद के रूप में विरोध याचिका का व्यवहार के लिए अधिकार–क्षेत्र हो सकता है, यह एक अलग मामला है। निःसंदेह, यदि वह विरोध याचिका को एक परिवाद के रूप में व्यवहार करता है तो उसे संहिता की धारा 200 और 202 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना होगा यदि परवर्ती अनुभाग भी मजिस्ट्रेट को स्वयं सौंपता है। दूसरे शब्दों में, आवश्यक रूप से परिवादी एवं उसके गवाहों की जांच करनी होगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विरोध याचिका में परिवादी द्वारा किसी मजिस्ट्रेट को उपलब्ध कराए गए तथ्यों के ऊपर निर्भर करता है, यह किसी विशेष मामले में अपनी अंतर्निहित प्रकृति और अंतिम आख्या में निष्कर्ष पर प्रभाव के संबंध में अवलम्बित होने में सक्षम हो सकता है। अर्थात, यदि सामग्री ऐसी है कि यह न्यायालय को जांच अधिकारी द्वारा दिए गए निष्कर्षों से असहमत होने के लिए राजी करता है तो संहिता की धारा 190 (1) (बी) के तहत संज्ञान लिया जा सकता है जिसके लिए संहिता की धारा 200 के तहत गवाहों की जांच करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु जैसा कि मजिस्ट्रेट को परिवाद के रूप में विरोध याचिका का व्यवहार करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है, परिवादी को इसके

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उपाय के तहत नया परिवाद दायर करना होगा और मजिस्ट्रेट को संहिता की धारा 200 के तहत प्रक्रिया का पालन करने के लिए आमंत्रित करना होगा अथवा संहिता की धारा 200 के साथ धारा 202 पढ़ा जाए। इसलिए, हमारे दृष्टिकोण में इस मामले के तथ्यों में हम उच्च न्यायालय के फैसले का समर्थन नहीं कर सकते।

42. यह सत्य है कि विधि शासनादेश सूचनादाता/परिवादी को सूचना देता है जहां मजिस्ट्रेट अंतिम आख्या को स्वीकार करने पर चिंतन करता है। सूचना प्राप्त होने पर सूचनादाता अंतिम आख्या पर अपनी आपत्तियों को प्रकाश में लाते हुए न्यायालय को संबोधित कर सकता है। यह वह आमतौर पर विरोध याचिका के रूप में करता है। महाबीर प्रसाद अग्रवाल बनाम राज्य [AIR 1958 Ori. 11] मामले में उच्च न्यायालय उड़ीसा के विद्वत न्यायाधीश ने माना कि एक विरोध याचिका परिवाद की प्रकृति में है और द.प्र.सं. के अध्याय XVI के प्रावधानों के अनुसार जाँच की जानी चाहिए। हालाँकि, हमने यह भी ध्यान दिया कि कासिम एवं अन्य बनाम राज्य एवं अन्य [1984 CriLJ 1677] मामले में अन्य बातों के साथ, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधिकरण के विद्वत एकल न्यायाधीश द्वारा निम्नलिखित अवधारित किया गया:

> "4. ... अभिनंदन झा MANU/SC/0054/1967 (उपरोक्त) के मामले में भी जो अवलोकन किया गया था वह 'यह बहुत स्पष्ट नहीं है कि क्या मजिस्ट्रेट ने विरोध याचिका को परिवाद के रूप में चुना है।' इस अवलोकन का मतलब यह नहीं होगा कि प्रत्येक विरोध याचिका को आवश्यक रूप से और शिकायत के रूप में माना जाना चाहिए कि क्या यह शिकायत की शर्तों को संतुष्ट करता है अथवा नहीं। एक निजी परिवाद में जाँच किये जाने के लिए गवाहों की पूरी सूची होनी चाहिए। परिवादी की आगे की जाँच दं.प्र.सं. की धारा 200 के तहत की जाती है। यदि मजिस्ट्रेट ने विरोध याचिका को एक परिवाद के रूप में न माना हो तो विरोध याचिका उनके मन से परिवाद की सभी शर्तों को संतुष्ट नहीं करती, इसका मतलब यह नहीं होगा कि मामला एक परिवाद का मामला बन गया है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वास्तव में, अधिकांश मामलों में जब अंतिम आख्या प्रस्तुत की जाती है, तो मजिस्ट्रेट को केवल इस बात पर विचार करना होता है कि क्या केस डायरी में तथ्यों पर अंतिम आख्या को स्वीकार करने के लिए कोई मामला नहीं बनता अथवा क्या केस डायरी एक प्रथम दृष्टया मामले के संज्ञान लेने के रूप में खुलासा करती है। ऐसी स्थिति में विरोध याचिका केवल केस डायरी में तथ्यों पर मजिस्ट्रेट का ध्यान खींचने और मजिस्ट्रेट द्वारा से सावधानीपूर्वक जांच और मन के प्रयोग को आमंत्रित करने के उद्देश्य से कार्य करती है, इसलिए केवल यह अवधारित नहीं किया जा सकता कि एक विरोध याचिका मामले का एक परिवाद मामला बन जाना।"

43. हम यह भी ध्यान दे सकते हैं कि वीरप्पा और अन्य बनाम भीमारेडप्पा [2002 CriLJ 2150 (Karnataka)] में, कर्नाटक उच्च न्यायालय ने अवलोकित किया जो इस प्रकार है:

"9. उपरोक्त से, जो स्थिति उभरती है वह यह है: जहां प्रारम्भ में परिवादी ने दं.प्र.सं. की धारा 200 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई परिवाद दायर नहीं की है, लेकिन केवल पुलिस से संपर्क किया है और जहां जांच के बाद पुलिस ने 'बी' रिपोर्ट दर्ज की है, यदि परिवादी विरोध करना चाहता है तो एक परिवाद पर वह दं.प्र.सं. की धारा 190 (1) (ए) के तहत संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट को आमंत्रित कर रहा है। यदि ऐसा होना था तो विरोध याचिका जो उसने दायर की है, को उसे दं.प्र.सं. की धारा 2 (डी) में परिभाषित परिवाद की आवश्यकताओं को पूरा करना होगा, और इसमें ऐसे तथ्य शामिल होने चाहिए जो अपराध का गठन करते हैं, जिसके लिए, विद्वत मजिस्ट्रेट दं.प्र.सं. की धारा 190 (1) (ए) के तहत संज्ञान ले रहे हैं। इसके बजाय, यदि यह केवल उन सभी आवश्यक विवरणों को शामिल किए बिना विरोध याचिका के रूप में निर्मित किया जाना है जिसमें एक सामान्य परिवाद को शामिल करना है, तो इसे दं.प्र.सं. की धारा 200 के तहत कार्यवाही के उद्देश्य के लिए परिवाद के रूप में अर्थ नहीं लगाया जा सकता।"

44. परिवाद को संहिता की धारा 2 (डी) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

"(घ) "परिवाद" का तात्पर्य कोई आरोप जो मौखिक या लिखित रूप में मजिस्ट्रेट को दिया गया हो, इस संहिता के तहत कार्रवाई करने की दृष्टिकोण में

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किसी व्यक्ति द्वारा, चाहे वह ज्ञात हो अथवा अज्ञात, कोई अपराध कारित किया गया हो, परन्तु पुलिस आख्या में शामिल नहीं है। स्पष्टीकरण–किसी मामले में एक पुलिस अधिकारी द्वारा की गई एक रिपोर्ट जांच के बाद जो खुलासा करती है कि एक गैर–संज्ञेय अपराध के आयोग को परिवाद समझा जाएगा; और पुलिस अधिकारी जिसके द्वारा ऐसी आख्या तैयार की जाती है, उसे परिवादी समझा जाएगा; ”

45. यदि कोई विरोध याचिका किसी परिवाद की आवश्यकताओं को पूरा करती है तो मजिस्ट्रेट विरोध याचिका को परिवाद के रूप में मान सकता है और जैसा आवश्यक हो संहिता की धारा 202 के साथ पठित धारा 200 के तहत व्यवहार कर सकता है। वास्तव में इस मामले में, विरोध याचिका में ऐसे गवाहों की कोई सूची नहीं है। विरोध याचिका में प्रार्थना अंतिम आख्या को अपास्त और अंतिम आख्या विरूद्ध आवेदन को अनुमति देना है। हालांकि हम यह सुझाव नहीं दे रहे हैं कि यह स्वरूप पूर्णतः इस प्रश्न का निर्णायक होना चाहिए कि क्या यह एक परिवाद के रूप में अथवा एक परिवाद के रूप में व्यवहार किये जाने की उत्तरदायी हो, हम अनिवार्य रूप से सोचेंगे कि इस मामले में विरोध याचिका अंतिम आख्या के विरूद्ध दूसरे प्रत्यर्थी की आपत्तियों का उपसंहार है ।

46. यह हमें मामले के एक पहलू पर लाता है जो वास्तव में बार में तर्क नहीं दिया गया था। विशेष अनुमति और आज्ञा से मृतक के पति द्वारा अपील दायर की गई है। प्रथम सूचना आख्या में आरोपों को अपीलार्थियों के अन्य रिश्तेदारों जैसे कि, उनके माता–पिता और ससुराल वालों और उनके भाई–बहनों के विरूद्ध भी उठाया गया है। उन्होंने उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती नहीं दी है। उनके द्वारा किए गए अपराधों के संबंध में भी आरोप लगाए गए हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

47. इस संबंध में हम एक पहलू पर ध्यान दे सकते हैं। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा अंतिम आख्या को स्वीकार कर लिया गया और अपीलार्थी सहित किसी भी अभियुक्त के विरूद्ध कार्रवाई नहीं करने का फैसला किया। इस कदम की अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पुष्टि की गई। उच्च न्यायालय के समक्ष, न तो अपीलार्थी और न ही उसके किसी रिश्तेदार को पक्षकार बनाया गया था। जब उच्च न्यायालय द्वारा आख्या को स्वीकार करने और पुनर्विचार का निर्देश देने का आदेश पारित किया गया था तो क्या अपीलार्थी और अन्य रिश्तेदारों को अभियोजित करने के लिए दूसरे प्रत्यर्थी/प्रतिवादी के लिए यह आवश्यक था? क्या हम उच्च न्यायालय के निर्णय को केवल अपीलार्थी की हैसियत से अपास्त कर सकते हैं अथवा क्या हम इस मामले के तथ्यों में भी सभी अभियुक्त के विरुद्ध उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप कर सकते हैं?

48. यह सच हो सकता है कि जब तक प्रक्रिया जारी नहीं की जाती है तब तक अभियुक्त को सुनवाई का अधिकार नहीं हो सकता है (देखें आइरिस कंप्यूटर लिमिटेड बनाम असकरी इंफोटेक प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य [(2015) 14 एससीसी 399] मामले में इस न्यायालय का निर्णय)।

49. वास्तव में, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के प्रस्तर 11 में, जिसे हमने अपने फैसले के प्रस्तर 6 में निकाला है, विरोध याचिका पर विचार किया ताकि संहिता की धारा 190 (1) (बी) के तहत संज्ञान लिया जा सके। यह आधारिका जहाँ तक बिना किसी आधार के मर्यादानुसार बनाता है वह अन्य अभियुक्त जो अपीलार्थी के सम्बन्धी हैं, हमें लगता है कि आक्षेपित आदेश को अपास्त होना चाहिए। आरोपों की प्रकृति और भारत के संविधान

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के अनुच्छेद 142 के तहत भी हमारी शक्तियों के प्रयोग के संबंध में हमें उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त रखना चाहिए।

50. हमें लगता है कि इस मामले के तथ्यों में, उच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप किया और आदेशों को अपास्त करने में उच्च न्यायालय के तथ्यों का कोई औचित्य नहीं था।

51. परिणामस्वरूप, अपील की अनुमति दी जाएगी, उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश अपास्त रखा जाएगा। हालांकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के आदेश में पहले से ही देखा गया परिवाद दायर करने के लिए दूसरे प्रत्यर्थी के अधिकारों के पक्षपात के बिना होगा।

(न्यायमूर्ति, संजय किशन कौल)

.....

(न्यायमूर्ति, के. एम. जोसेफ)

.....

नई दिल्ली,

09 जुलाई, 2019

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।